कश्मीरी लाल बनाम हरियाणा राज्य (एस. एस. संधावालिया, सी. जे.)

पूरी बेंच

एस.एस. संधावालिया सी.जे., सी.एस. तिवाना और एस.एस. दीवान, जे.जे. के सामने

कश्मीरी लाल, याचिकाकर्ताओं

बनाम

हरियाणा राज्य, प्रतिवादी

1979 का आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 189

21 अप्रैल 1981.

खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम (1954 का XXXVII) -धारा 13 और 16 (1) (ए) (i) -खाद्य अपमिश्रण निवारण नियम , 1955 नियम 9 (जे) - सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट आरोपी को नहीं दी गई निर्धारित समय के भीतर -नियम 9(जे) के प्रावधानों का ऐसा अनुपालन न करना - क्या संपूर्ण कार्यवाही को दूषित करता है-नियम 9(जे) के प्रावधान- क्या अनिवार्य है।

माना गया कि खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम , 1954 की धारा 13 के विधायी इतिहास से यह स्पष्ट होगा कि 1955 में अधिनियम के लागू होने के बाद क़ानून की किताब में नियम 9 (जे) के अनुरूप दूर-दूर तक कोई आवश्यकता नहीं थी। यहां तक कि जब इसे पहली बार जुलाई 1968 में निर्धारित किया गया था, तब भी इसमें कोई समय सीमा नहीं रखी गई थी जिसके भीतर वर्ष 1973 तक आरोपी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की गई थी। उसके बाद ही यह समय सीमा शुरू की गई थी नियम 9 (जे) में संशोधन और पहले बमुश्किल तीन से चार साल तक क़ानून की किताब पर रहा। इसे छोड़ दिया गया . यह सब स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि इस समय सीमा के निर्धारण को आवश्यक रूप से वैधानिक प्रावधानों में आधार या अभिन्न नहीं माना जा सकता है। विधायिका द्वारा पहले ऐसी कोई समय सीमा प्रदान नहीं की गई थी और बाद में कानून की पिछली स्थिति में वापस आ जाने से इसे कम महत्व देने का इरादा स्पष्ट हो जाता है। यहां तक कि धारा 13 और प्रासंगिक वैधानिक नियमों की बड़े परिप्रेक्ष्य में जांच करते समय भी ऐसा प्रतीत होता है कि

मामले का मूल केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला द्वारा नए सिरे से विश्लेषण किए गए नमूनों में से एक के लिए आरोपी व्यक्तियों को एक मूल्यवान सुरक्षा प्रदान करना है। इस संदर्भ में निदेशक की रिपोर्ट को निर्णायक बना दिया गया है और यह अन्य रिपोर्टों का स्थान ले लेती है। इसलिए, इन प्रावधानों का सार इस अधिकार का अनुदान है। धारा 13 और नियमों के कुछ शेष प्रावधान मूल रूप से इस विशेषाधिकार की रक्षा और सुरक्षा के लिए प्रक्रियात्मक हैं, जब तक कि इसका उल्लंघन या उल्लंघन नहीं किया जाता है। प्रक्रियात्मक प्रावधानों में मामूली बदलाव को आवश्यक रूप से घातक नहीं कहा जा सकता। यह महत्वपूर्ण है कि नियम 9 (जे) उन दस कर्तव्यों में से एक है जो नियम 9 द्वारा खाद्य निरीक्षक पर लगाए गए थे।

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

यह आसानी से कहा जा सकता है कि इन दस कर्तव्यों के प्रत्येक पहलू में हर मामूली बदलाव के परिणामस्वरूप पूरी कार्यवाही ख़राब हो जाएगी और भले ही नियम 9 के शुरुआती भाग में 'करेगा' शब्द का प्रयोग किया गया है, लेकिन ऐसा नहीं है आवश्यक रूप से इस बात का पालन करें कि इस शब्द का प्रयोग अपने आप में निर्णायक है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि एक वैधानिक प्रावधान , भले ही अनिवार्य शर्तों में शामिल हो, संक्षेप में निर्देशिका हो सकता है। सिद्धांत रूप में , इसलिए, यह नहीं माना जा सकता है कि नियम 9 (जे) में उल्लिखित समय सीमा इतनी सख्त, कठोर और अनम्य है कि इसका अनुपालन न करने से पूरी कार्यवाही ख़राब हो जाएगी। हालाँकि, इस तरह के उल्लंघन से भौतिक पूर्वाग्रह स्थापित करना अभियुक्त पर निर्भर है और यदि वह ऐसा करता है तो अदालत उसके खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन पर इसके प्रभाव पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगी। (पैरा 7, 8 और 15)

भोला नाथ नायक बनाम राज्य एवं अन्य, 1977 सीआरएल। एल. जे. 154.

से असहमत।

नाथी राम बनाम हरियाणा राज्य 1978 पी.एल.एल..आर. 122.

हरियाणा राज्य बनाम जगतार सिंह, 1979 पी.एल.आर. 553.

खारिज कर दिया गया।

मामला 21 जनवरी को माननीय श्री न्यायमूर्ति सी.एस. तिवाना द्वारा संदर्भित किया गया। 1981 मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए एक बड़ी पीठ को भेजा गया। माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री एस .एस. संधावालिया और माननीय श्री न्यायमूर्ति सी .एस. तिवाना की खंडपीठ ने 26 फरवरी, 1981 को मामले को फिर से बड़ी पीठ के पास भेज दिया। पूर्ण पीठ में माननीय मुख्य न्यायाधीश श्री शामिल थे। एस .एस. संधावालिया, माननीय श्री न्यायमूर्ति सी .एस. तिवाना और माननीय श्री न्यायमूर्ति एस.एस. दीवान ने अंततः 21 अप्रैल, 1981 को मामले का फैसला किया।

श्री शिव दास त्यागी , सत्र न्यायाधीश, रोहतक की अदालत के 8 फरवरी, 1978 के आदेश के पुनरीक्षण के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 401 के तहत याचिका, जिसमें श्री केवल सिंह मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट , रोहतक के 30 फरवरी के आदेश को संशोधित किया गया है। नवंबर , 1978, अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता को दोषी ठहराया गया और सजा सुनाई गई।

याचिकाकर्ताओं के वकील आर.एस.मित्तल।

एच. एस. गिल, ए.ए.जी. (हरयाणा) प्रतिवादी के लिए ।

एस.एस. संधावालिया, सी.जे.-

(1) क्या खाद्य अपमिश्रण निवारण का नियम 9 (जे). नियम, 1955 (अब निरस्त कर दिया गया है और नियम 9-ए द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है 4 जनवरी, 1977 से) हालांकि शर्तों में शामिल होना अभी भी अनिवार्य है

कश्मीरी लाल बनाम हरियाणा राज्य (एस. एस. संधावालिया, सी. जे.)

कि पदार्थ निर्देशिका में वह सार्थक प्रश्न है जिसके कारण पूर्ण पीठ को यह सन्दर्भ आवश्यक हो गया था।

(2) उपरोक्त मुद्दे को जन्म देने वाले तथ्यों का मैट्रिक्स एक संकीर्ण दिशा में निहित है। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम और उसमें बनाए गए नियमों के अनुसार खाद्य निरीक्षक ने 11 अक्टूबर, 1974 को याचिकाकर्ता से दही का एक नमूना प्राप्त किया। इसे उचित प्रेषण के साथ सार्वजनिक विश्लेषक को भेज दिया गया और उन्होंने अक्टूबर को इसका

विश्लेषण पूरा किया। 23 अक्टूबर 1974 और 4 नवंबर 1974 को उसके संबंध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इससे संकेत मिलता है कि उसमें दूध वसा केवल 0.3 प्रतिशत थी और दूध-ठोस वसा 8.1 प्रतिशत नहीं थी। इस आधार पर दूध-वसा में 95 प्रतिशत तथा दूध-ठोस गैर-वसा में 10 प्रतिशत न्यूनतम निर्धारित मानक से कम पाया गया। खाद्य निरीक्षक ने बाद में 23 जनवरी 1975 को अदालत में याचिकाकर्ता के खिलाफ शिकायत दर्ज की और विधिवत तामील होने के बाद याचिकाकर्ता 24 फरवरी 1975 को उपस्थित हुआ। याचिकाकर्ता ने 3 सितंबर 1975 को मुकदमे के दौरान फरार होने का फैसला किया और 2 मार्च 1978 तक दोबारा उपस्थित नहीं हुए इसके बाद जब तक मामला बहस के चरण तक नहीं पहुंच गया तब तक वह आनंदपूर्वक चुप रहे। इसके बाद उन्होंने पहली बार किसी आवेदन को प्राथमिकता दी। 31 अगस्त 1978 को उप मुख्य-चिकित्सा अधिकारी के कार्यालय में रखे गए नमूना बोतल को केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला गाजियाबाद द्वारा विश्लेषण के लिए भेजने के लिए जैसा कि नमूना लेने के चार साल बाद अपरिहार्य था निदेशक केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला ने 24 अक्टूबर 1978 को अपनी रिपोर्ट इस आशय से भेजी कि यद्यपि नमूना बरकरार पाया गया और ठीक से सील किया गया था फिर भी उसकी सामग्री विघटित हो गई थी और विश्लेषण के लिए उपयुक्त नहीं माना गया। याचिकाकर्ता को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट रोहतक द्वारा खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम (इसके बाद अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 16 (1) (ए) (आई) के तहत दोषी ठहराया गया था और 11 साल के कठोर कारावास और रु. 1,000 जुर्माने की सजा सुनाई गई थी। अपील पर विद्वान सत्र न्यायाधीश रोहतक ने याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि को बरकरार रखा लेकिन जुर्माने की सजा को कम करते हुए नौ महीने के कठोर कारावास की सजा को कम कर दिया। तब याचिकाकर्ता ने वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को प्राथमिकता दी जो पहली बार अकेले बैठे मेरे विद्वान भाई सी.एस. तिवाना, जे, के समक्ष सुनवाई के लिए आई थी। इस न्यायालय के साथ-साथ दूसरे न्यायालय में भी मिसाल का टकराव दिख रहा है. उच्च न्यायालय मैं एक बड़ी बेंच द्वारा इस मुद्दे पर और इसमें सार्थक शामिल मुद्दे पर वजह से आगे निर्णय के लिए निम्नलिखित प्रश्न तैयार किया गया था :-

"क्या खाद्य अपमिश्रण निवारण का नियम 9 (जे) नियम 1955, जिसे अब नियम 9-ए द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा (1981)2

इसे सख्ती से लागू किया जाना चाहिए ताकि यह माना जा सके कि किसी भी निर्देश का अनुपालन न करने से आरोपी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा , जिसका लाभ उसे मिलना चाहिए ताकि वह बरी हो जाए।

(3) जब मामला डिवीजन बेंच के सामने आया , तो प्रतिवादी-राज्य ने हरियाणा राज्य बनाम जगतार सिंह[1] में डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए दृष्टिकोण की शुद्धता को कड़ी चुनौती दी जिसके परिणामस्वरूप इस संदर्भ की आवश्यकता हुई पूर्ण पीठ के पास और इसी तरह मामला अब हमारे सामने है।

4. यदि हम नियम 9 (जे) की भाषा का अर्थ समझने के लिए आगे बढ़ें तो इस प्रावधान के इतिहास का संदर्भ लेना शिक्षाप्रद है क्योंकि यह उस विधायी इरादे के लिए एक स्पष्ट संकेतक प्रदान करता है। खाद्य अपमिश्रण निवारण अधिनियम 1 जून, 1955 को प्रख्यापित किया गया था , और उसके तहत खाद्य अपमिश्रण निवारण नियम 1955 को 1956 में अलग-अलग तारीखों पर लागू किया गया था। लगभग तेरह वर्षों तक अधिनियम की कोई धारा या कोई नियम नहीं था जो खाद्य निरीक्षक से सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की एक प्रति आरोपी को उपलब्ध कराने की मांग की। 18 जुलाई, 1968 को नियम 9 (जे) को निम्नलिखित रूप में शामिल किया गया था: -

"9(जे) सार्वजनिक विश्लेषक से फॉर्म III में प्राप्त रिपोर्ट की एक प्रति हाथ से या पंजीकृत डाक से उस व्यक्ति को भेजें जिससे नमूना लिया गया था यदि यह अधिनियम के अनुरूप नहीं पाया जाता है या कोर्ट में मामला दायर होते ही इसके तहत नियम बना दिए जाते हैं।"

यह स्पष्ट होगा कि उस स्तर पर यह केवल यह प्रावधान किया गया था कि खाद्य निरीक्षक को उक्त रिपोर्ट की एक प्रति (यदि यह प्रतिकूल थी) उस व्यक्ति को हाथ से या पंजीकृत डाक से भेजनी चाहिए जिससे मामला सामने आते ही नमूना लिया गया था। न्यायालय में दायर किया गया। जाहिर तौर पर इसमें कोई समय निर्धारित नहीं किया गया था जिसके भीतर सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की प्रति

खाद्य निरीक्षक द्वारा आरोपी को आपूर्ति की जानी आवश्यक थी। 1974 में ही जब उप-नियम (जे) में पहली बार संशोधन किया गया था तब इसमें सार्वजनिक विश्लेषक से रिपोर्ट की प्राप्ति के 10 दिनों के भीतर खाद्य निरीक्षक द्वारा आरोपी को रिपोर्ट की एक प्रति देने का प्रावधान किया गया था। इस नियम में 13 फरवरी, 1974 को संशोधन किया गया था और 11 अक्टूबर, 1974 को जब याचिकाकर्ता से नमूना लिया गया था तब से लागू हुआ था।

(1) 1979 पी.एल.आर. 553.

Kashmiri Lal v. State of Haryana (S. S. Sandhawalia, C.J.)

इसे इस प्रकार पढ़ा जाता है:-

> "9 (जे) सार्वजनिक विश्लेषक से फॉर्म III में प्राप्त रिपोर्ट की एक प्रति उस व्यक्ति को जिससे नमूना लिया गया था उक्त रिपोर्ट की प्राप्ति के दस दिनों के भीतर पंजीकृत डाक से भेजें। हालांकि यदि नमूना अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुरूप है तो व्यक्ति को इसकी सूचना दी जा सकती है और रिपोर्ट भेजने की आवश्यकता नहीं है।"

(5) हालाँकि इस प्रावधान का बाद का कानूनी इतिहास भी उतना ही प्रासंगिक प्रतीत होता है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि 4 जनवरी, 1977 को उपरोक्त नियम 9 (जे) को पूरी तरह से हटा दिया गया था और नियम 9-ए का एक नया प्रावधान जोड़ा गया था। उसके प्रासंगिक भाग को विस्तार से देखा जा सकता है-

> "9-ए स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकरण अभियोजन की स्थापना के तुरंत बाद नियम 7 के उप-नियम (3) के तहत फॉर्म III में विश्लेषण के परिणाम की रिपोर्ट की एक प्रति पंजीकृत डाक से भेजेगा या हाथ से जैसा उचित हो उस व्यक्ति को जिससे खाद्य निरीक्षक द्वारा वस्तु का नमूना लिया गया था और साथ ही उस व्यक्ति को यदि कोई हो जिसका नाम पता और अन्य विवरण अधिनियमकी धारा 14- ए के तहत प्रकट किया गया है :

उसे उपलब्ध कराया : : : :

अब उपरोक्त से यह स्पष्ट हो जाएगा कि सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट प्राप्त होने पर उस समय सीमा की आवश्यकता पूरी तरह से हटा दी गई है जिसके भीतर सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट प्राप्त होने पर उसकी एक प्रति दी जानी थी या दी जानी थी। इसके बजाय यह प्रावधान किया गया है कि अभियोजन शुरू होने के बाद ही रिपोर्ट की एक प्रति आरोपी को तुरंत भेजनी होगी।

6. इस संदर्भ में अधिनियम की धारा 13 का संदर्भ पुनः है अपरिहार्य है क्योंकि यह आवश्यकता पड़ने पर केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक द्वारा नमूने के दूसरे और निर्णायक विश्लेषण का प्रावधान करता है जो सार्वजनिक विश्लेषक द्वारा दी गई रिपोर्ट का स्थान लेता है।

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

यह ध्यान देने योग्य है कि अधिनियम की धारा 13 में पर्याप्त संशोधन 1976 के अधिनियम संख्या 34 द्वारा किए गए थे, जिसके तहत उप-धारा (1) और (2) में संशोधन के अलावा उप -धारा (2-ए) से (2-ई) तक संशोधन किए गए थे जो उसमें डाले गए थे। इनमें अब अन्य बातों के साथ -साथ प्रावधान है कि विश्लेषण के परिणाम की रिपोर्ट इस आशय की प्राप्त होने पर कि खाद्य पदार्थ में मिलावट की गई है सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की एक प्रति आरोपी व्यक्ति या व्यक्तियों को यह सूचित करते हुए भेजी जाएगी कि सभी या उनमें से कोई भी यदि वे चाहें तो स्थानीय (स्वास्थ्य) प्राधिकरण द्वारा रखे गए खाद्य पदार्थ के नमूने का विश्लेषण कराने के लिए रिपोर्ट की प्रति प्राप्त होने से दस दिनों की अवधि के भीतर केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला द्वारा न्यायालय में आवेदन कर सकते हैं। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अब विधायिका ने दूसरी ओर कुछ समय सीमा निर्धारित करने की मांग की है जिसके भीतर आरोपी व्यक्ति केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक द्वारा नमूने का अंतिम विश्लेषण कराने के अपने मूल्यवान अधिकार का प्रयोग कर सकते हैं।

(7) इस प्रकार उपरोक्त प्रावधान के विधायी इतिहास से यह स्पष्ट होगा कि 1955 में अधिनियम के लागू होने के बाद लगभग 13 वर्षों तक (शुद्ध खाद्य अधिनियम की पूर्ववर्ती क़ानून की अनदेखी करते हुए) इसकी कोई आवश्यकता भी नहीं थी क़ानून की किताब में नियम 9 (जे) के समान ही। यहां तक कि जब इसे पहली बार जुलाई 1968 में निर्धारित किया गया था , तब भी इसमें कोई समय सीमा नहीं रखी गई थी

जिसके भीतर वर्ष 1973 तक आरोपी को रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान की गई थी। उसके बाद ही यह समय सीमा शुरू की गई थी नियम 9(जे) में संशोधन और 4 जनवरी, 1977 को हटाए जाने से पहले बमुश्किल तीन से चार साल तक क़ानून की किताब में रहा। यह सब स्पष्ट रूप से इस तथ्य का संकेत है कि इस समय सीमा के नुस्खे पर आवश्यक रूप से विचार नहीं किया जा सकता है। वैधानिक प्रावधानों में बुनियादी या अभिन्न के रूप में। विधायिका द्वारा पहले ऐसी कोई समय सीमा प्रदान नहीं की गई थी और बाद में कानून की पिछली स्थिति में वापस आ जाने से इसे कम महत्व देने का इरादा स्पष्ट हो जाता है।

8. अब धारा 13 के प्रावधान और संबंधित वैधानिक नियमों की व्यापक परिप्रेक्ष्य में जांच करने पर यह प्रतीत होता है कि मामले का मूल आरोपी व्यक्तियों को केंद्रीय खाद्य द्वारा नए सिरे से प्रयोगशाला मैं विश्लेषण किए गए नमूनों में से एक के लिए एक मूल्यवान सुरक्षा प्रदान करना है। इस संदर्भ में निदेशक की रिपोर्ट को निर्णायक बना दिया गया है और यह अन्य रिपोर्टों का स्थान ले लेती है। इसलिए इन प्रावधानों का सार इस अधिकार का अनुदान है।

कश्मीरी लाल बनाम हरियाणा राज्य (एस. एस. संधावालिया, सी. जे.)

धारा 13 और नियमों के कुछ शेष प्रावधान मूल रूप से इस विशेषाधिकार की रक्षा और सुरक्षा के लिए प्रक्रियात्मक हैं जब तक कि इसका उल्लंघन नहीं किया जाता है। प्रक्रियात्मक प्रावधानों में मामूली बदलाव को आवश्यक रूप से घातक नहीं कहा जा सकता। यह महत्वपूर्ण है कि नियम 9(जे) उन दस कर्तव्यों में से केवल एक है जो नियम 9 द्वारा खाद्य निरीक्षक पर लगाए गए थे। यह आसानी से नहीं कहा जा सकता है कि इन दस कर्तव्यों के प्रत्येक पहलू के प्रत्येक मामूली बदलाव के आवश्यक परिणाम होंगे। पूरी कार्यवाही को ख़राब करने का. यद्यपि नियम 9 के आरंभिक भाग में 'करेगा' शब्द का प्रयोग किया गया है , फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस शब्द का प्रयोग अपने आप में निर्णायक है। अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि एक वैधानिक प्रावधान भले ही अनिवार्य शर्तों में शामिल हो संक्षेप में निर्देशिका हो सकता है। मैं यह देखने में असमर्थ हूं कि समय -सीमा को एक या दो दिन या कुछ दिनों तक बढ़ाने से मुकदमे के दौरान अपने बचाव में किसी आरोपी व्यक्ति पर अनिवार्य रूप से या गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। इसलिए यह मानना मुश्किल लगता है कि नियम 9 (जे) में उल्लिखित समय सीमा इतनी सख्त कठोर और अनम्य है कि इसका अनुपालन न करने पर पूरी कार्यवाही ख़राब हो जाएगी।

(9) वैधानिक प्रावधानों के आलोक में मैंने सैद्धांतिक रूप से जो कहा है वह मिसाल के वजन से भी उतना ही समर्थित प्रतीत होता है। इस संदर्भ में केरल राज्य आदि बनाम अलसेरी मोहम्मद आदि [2] मामले में संविधान पीठ की टिप्पणियों को गौरवपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए। उसमें भी उनके आधिपत्य खाद्य अपमिश्रण निवारण नियम 1955 के एक प्रावधान का अर्थ लगा रहे थे अर्थात् विश्लेषण के लिए सार्वजनिक विश्लेषक या निदेशक को भेजे जाने वाले भोजन के नमूने की मात्रा के संबंध में नियम 22। उक्त नियम में समान रूप से 'होगा' शब्द का भी प्रयोग किया गया था। फिर भी सर्वोच्च न्यायालय के एक पूर्व निर्णय को सर्वसम्मति से पलटते हुए यह इस प्रकार देखा गया:-

> "**** परंतु यह सर्वविदित है कि केवल 'करेगा' शब्द के प्रयोग से सदैव यह परिणाम नहीं निकलता। मुद्दे पर निर्णय लेने के लिए प्रावधान के पूरे उद्देश्य और संदर्भ को ध्यान में रखना होगा। अधिनियम का उद्देश्य मिलावटी भोजन का कारोबार करने वाले व्यक्ति को दोषी ठहराना है।"

(2) ए. आई. आर 1978 एस.सी. 933

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981)2

हालाँकि जो मामला सीधे तौर पर इस मुद्दे को चारों ओर से नियंत्रित करता है वह गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ का फैसला है जिसे एम.एम. पंड्या आदि भगवानदास चिरंजी लाल और एक अन्य (3) के रूप में रिपोर्ट किया गया है एक विस्तृत चर्चा और मामले के कानून की जांच के बाद इसमें जो निष्कर्ष निकाला गया वह इस प्रकार है:-

> "इसलिए, हमारी राय है कि खाद्य अपमिश्रण निवारण नियमों के आर . 9 (जे) में निर्धारित 10 दिनों की समय सीमा का उल्लंघन आवश्यक रूप से अभियोजन को प्रभावित नहीं करता है और न ही यह किसी भी तरह से वैधता को प्रभावित करता है। सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की स्वीकार्यता। हालाँकि यह अभियुक्त के लिए खुला है कि वह इस तरह के उल्लंघन के कारण हुए पूर्वाग्रह को साबित कर सकता है और यदि कोई अभियुक्त इसे साबित कर देता है तो अदालत उसके खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन पर इसके प्रभाव पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है। जो प्रश्न हमसे पूछा गया है हमें उसके अनुसार उत्तर दीजिए।''

हम कानून की पूर्वोक्त व्याख्या के साथ सम्मानजनक और पूरी तरह सहमत हैं और उसी आधार पर दोबारा नहीं जाना चाहेंगे जिसे उस विस्तृत और स्पष्ट निर्णय द्वारा सराहनीय रूप से कवर किया गया है। यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि उपरोक्त दृष्टिकोण शकूर बनाम राजस्थान राज्य (4) लोक अभियोजक बनाम प्यारे अली (5) और इम्मादी रामा-चंद्रम बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (6) के अनुरूप है।

10. उपरोक्त कारणों के आलोक में मैं भोला नाथ नायक बनाम राज्य और अन्य (7) में व्यक्त विपरीत दृष्टिकोण पर अपनी असहमति को सम्मानपूर्वक दर्ज करूंगा।

11. अब इस न्यायालय के निर्णयों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए जिसके लिए वास्तव में बड़ी पीठ के लिए इस संदर्भ की आवश्यकता थी पहले नाथी राम बनाम हरियाणा राज्य (8) के रूप में रिपोर्ट किए गए एकल पीठ के फैसले का संदर्भ दिया जा सकता है। इसमें विद्वान न्यायाधीश ने भोला नाथ नायक (सुप्रा) के मामले पर बुनियादी भरोसा जताया

(3) 1979 सी. आर. एल.जे. 1449.

(4) 1977 सी. आर. एल.जे. 238.

(5) (1976)2 खाद्य अपमिश्रण मामले 51.

(6) 1976 सी. आर. एल.जे. 1832.

(7) 1977 सी. आर. एल. जे. 154.

(8) 1978 पी.एल.आर. 122.

कि पूर्वाग्रह के बावजूद नियम 9 (जे) का उल्लंघन मात्र कार्यवाही को ख़राब कर देगा। पहले से ही दर्ज कारणों से यह दृष्टिकोण अब कायम नहीं रह सकता है और सम्मान के साथ निर्णय को खारिज कर दिया गया है। हालाँकि स्पष्टता के लिए यह उल्लेख किया जा सकता है कि उपरोक्त निर्णय में उपरोक्त दृष्टिकोण अपनाने के लिए लाभ सिंह बनाम केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ (9) में ढिल्लों, जे. की टिप्पणियों का संदर्भ दिया गया था। हालाँकि लाभ सिंह के मामले को करीब से देखने पर पता चलता है कि इस प्रस्ताव के लिए कोई वारंट नहीं है कि नियम 9 (जे) या तो अनिवार्य है या इसका अनुपालन न करने मात्र से पूरी कार्यवाही अनिवार्य रूप से

ख़राब हो जाएगी। उक्त मामले में विद्वान न्यायाधीश एक संक्षिप्त संदर्भ में देखा गया कि याचिकाकर्ता को सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की एक प्रति नहीं दी गई थी और कई अन्य कारकों के साथ यह पाया गया कि इससे आरोपी के लिए भौतिक पूर्वाग्रह पैदा हुआ जहां तक कि वह मूल्यवान से वंचित था। दूध के नमूने का विश्लेषण केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला कलकत्ता के निदेशक से कराने का अधिकार था। इसी कारण से उनकी दोषसिद्धि को रद्द कर दिया गया था।

12. मेरे विद्वान भाई सी .एस. तिवाना, जे., ने महिपाल बनाम हरियाणा राज्य (10) में लाभ सिंह के उपरोक्त मामले को सही ढंग से अलग किया था और एम .एम. पंड्या के मामले (सुप्रा) में पूर्ण पीठ के दृष्टिकोण का पालन करते हुए नियम 9 को अपनाया था। (जे) अनिवार्य नहीं था और इसका अनुपालन न करना वास्तव में घातक नहीं होगा जब तक कि भौतिक पूर्वाग्रह न दिखाया जा सके। हम निःसंकोच उस दृष्टिकोण की पुष्टि करेंगे।

13. हरियाणा राज्य बनाम जगतार सिंह (11) में इस न्यायालय की डिवीजन बेंच के फैसले पर विचार करना बाकी है। उसमें भी 9 (जे) निर्माण के लिए गिर गया और यहां तक कि यह मानते हुए कि नाथी राम के मामले का फैसला गलत तरीके से किया गया था और आगे यह राय देते हुए कि आरोपी को किसी भी लाभ को सुरक्षित करने के लिए इसके गैर -अनुपालन के कारण भौतिक पूर्वाग्रह दिखाना होगा फिर भी इसे निम्नानुसार देखा गया: -

> ".....प्रावधानों की इस तरह से व्याख्या करते समय मुझे यह मानने की गलतफहमी नहीं होनी चाहिए कि नियम 9 (जे) अनिवार्य नहीं है और पूरी तरह से निर्देशिका है ताकि इसके गैर -अनुपालन को संबंधित अधिकारियों द्वारा हल्के में लिया जा सके।"

(9) 1973 सी. अच. एल. आर. 134.

(10) 1980 सी. आर. एल.जे. 772.

(11) 1979 पी.एल.आर. 553.

इसके अलावा आदेश के ऑपरेटिव हिस्से में विद्वान न्यायाधीशों ने बरी करने में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया भले ही तथ्यात्मक निष्कर्ष से संकेत मिलता है कि उस मामले में प्रतिवादी को कोई गंभीर या भौतिक पूर्वाग्रह नहीं हुआ था। इस सन्दर्भ में निम्न प्रकार देखा गया:-

> "..... प्राधिकरण को स्पष्ट रूप से एक निर्दिष्ट समय के भीतर आरोपी को सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की एक प्रति प्रदान करने का कर्तव्य सौंपा गया है। अभियोजन पक्ष केवल इस दलील के आधार पर इन प्रावधानों की कठोरता से बाहर नहीं निकल सकता कि अभियुक्त को सार्वजनिक विश्लेषक की प्रतिकूल रिपोर्ट के बारे में जानकारी होने की संभावना थी।''

विद्वान न्यायाधीशों के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ हमें यह प्रतीत होता है कि वर्तमान निर्णय के पहले भाग में सुविचारित टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त दृष्टिकोण अस्थिर है। कानूनी शब्दावली में यह मोटे तौर पर अच्छी तरह से स्थापित है कि अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन आवश्यक रूप से पूर्वाग्रह का अनुमान लगाता है। एक अनिवार्य नियम का उल्लंघन अनिवार्य रूप से अपने आप में विकृति का कलंक लेकर आता है। इसलिए डिवीजन बेंच की यह टिप्पणी कि पहले की टिप्पणियों के बावजूद वे अभी भी यह विचार रखेंगे कि नियम 9 (जे) अनिवार्य है वास्तव में भ्रामक होगा। इसलिए हम इस दृष्टिकोण को खारिज कर देंगे और मानेंगे कि प्रावधान निर्देशिका है हालांकि स्पष्ट रूप से खाद्य निरीक्षक जिस पर यह कर्तव्य लगाया गया है उसका पालन करने के लिए बाध्य है। डिवीजन बेंच द्वारा समान रूप से व्यक्त की गई राय यह है कि इस तथ्य के बावजूद कि नमूने का विश्लेषण करने का अधिकार किसी भी तरह से कुंठित नहीं था तब भी आरोपी को केवल प्रतिलिपि की गैर -सेवा से बरी होने का लाभ प्राप्त करना चाहिए और बनाए रखना चाहिए। उस पर /एक निर्दिष्ट समय के भीतर रिपोर्ट अस्थिर है। ऐसा दृष्टिकोण फिर से व्यावहारिक प्रभाव में उप -नियम (जे) को उसकी कठोरता में अनिवार्य और अनम्य बना देगा। इसलिए हम मिसाल की स्पष्टता के हित में डिवीजन बेंच की इन टिप्पणियों को भी खारिज करने के लिए मजबूर महसूस करते हैं।

14. निष्कर्ष निकालने के लिए हम यह विचार करते हैं कि नियम 9 (जे) भले ही अनिवार्य शर्तों में बनाया गया हो , पदार्थ निर्देशिका में ऐसा मानते हुए हमें अलसेरटी मोहम्मद के मामले (सुप्रा) में निम्नलिखित टिप्पणियों को लगभग समान संदर्भ में याद करना और दोहराना चाहिए: -

"*** हम यह जोड़ सकते हैं कि न्यायालयों के निर्णय यह मानते हैं कि नियम केवल निर्देशिका है और यदि मात्रा

कश्मीरी लाल बनाम हरियाणा राज्य (एस. एस. संधावालिया, सी. जे.)

खाद्य निरीक्षक द्वारा भेजा गया विश्लेषण के उद्देश्य के लिए पर्याप्त है सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट को केवल नियम के उल्लंघन के आधार पर खारिज नहीं किया जाना चाहिए इसका उद्देश्य खाद्य निरीक्षकों को चार्टर या लाइसेंस देना नहीं है नियम का उल्लंघन करने पर उन्हें याद रखना चाहिए कि निर्देशिका नियमों का भी पालन किया जाना चाहिए और उनका पर्याप्त रूप से अनुपालन किया जाना चाहिए। नियम का उल्लंघन करने वाला खाद्य निरीक्षक विभागीय रूप से उच्च अधिकारियों के प्रति जवाबदेह हो सकता है। इसलिए जहां तक संभव हो उसे नियमों के अनुपालन में हमेशा सतर्क रहना चाहिए और सार्वजनिक विश्लेषक को निर्धारित मात्रा से कम मात्रा में नमूना नहीं भेजना चाहिए , जब तक कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त कारण न हो।''

15. इसलिए हम पैराग्राफ 2 के अंत में दिए गए प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में देंगे। हालाँकि इस तरह के उल्लंघन से भौतिक पूर्वाग्रह स्थापित करना अभियुक्त पर निर्भर है और यदि वह ऐसा करता है तो अदालत उसके खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन पर इसके प्रभाव पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगी।

16. अब पूर्वोक्त नियम को लागू करने से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता वास्तव में वर्तमान मामले में नियम 9 (जे) के गैर-अनुपालन से उसके प्रति कोई पूर्वाग्रह स्थापित करने से बहुत दूर है। वास्तव में इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन्हें अपने खिलाफ लगे आरोप के बारे में पहले से ही जानकारी थी ताकि वह दही के दूसरे नमूने की जांच केंद्रीय खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक से करा सकें। सार्वजनिक विश्लेषक की रिपोर्ट की सामग्री को शिकायत में पुन : प्रस्तुत किया गया था जिसकी प्रति उन्हें समय पर दी गई थी इस बात पर भी सकारात्मक सबूत हैं कि केस दर्ज होने के बाद पब्लिक एनालिस्ट की रिपोर्ट उन्हें भेजी गई थी नतीजतन उसे अदालत में आवेदन करने से रोकने वाली कोई बात नहीं थी। 24 फरवरी 1975 को अपनी उपस्थिति के तुरंत बाद नमूने के नए सिरे से विश्लेषण के लिए ऐसा लगता है कि ऐसा करने के बजाय उन्होंने पहले फरार होकर और बाद में लगभग समय बीतने तक अपना समय रोककर अभियोजन को विफल करने का प्रयास किया है।

नमूना लेने के चार साल के मामले में बहस के चरण तक पहुंचने के बाद उन्होंने इसके विश्लेषण के लिए आवेदन किया। अनिवार्य रूप से इस समय तक नमूना विघटित हो जाएगा और इसलिए याचिकाकर्ता को रिपोर्ट से कोई लाभ नहीं मिल सकता है

आई. एल. आर. पंजाब और हरियाणा
(1981) 2

नियंत्रण खाद्य प्रयोगशाला के निदेशक ने 24 अक्टूबर 1978 को इस आशय की अधिसूचना जारी की। दोषसिद्धि की पुष्टि के लिए कोई अन्य तर्क नहीं उठाया गया है।

17. अनिवार्य रूप से उनकी ओर से सजा कम करने की प्रार्थना की गयी थी. हालाँकि इस बात को ध्यान में रखते हुए कि दूध की वसा इतनी अधिक मिलावटी थी कि आवश्यक मानक से 95 प्रतिशत कम थी हम अपीलीय अदालत द्वारा अपने विवेक से लगाई गई सजा में कोई अनुचित गंभीरता नहीं पा सकते हैं। इसलिए इसे भी बरकरार रखा गया है। पुनरीक्षण याचिका खारिज की जाती है।

एस.एस. दीवान जे. - मैं सहमत हूं।

एन.के.एस.

पूरी बेंच

एस.एस. संधावालिया, सी.जे., के.एस. तिवाना और एस.एस. दीवान, जे.जे. के सामने।

बोहर सिंह--याचिकाकर्ता

बनाम

पंजाब राज्य और अन्य-प्रतिवादी

1980 की आपराधिक रिट याचिका संख्या 45

5 मई 1981.

भारत का संविधान 1950-अनुच्छेद 21 और 226-फास्ट पंजाब चिल्ड्रेन एक्ट (1949 का XXXIX) धारा 27-सत्र न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई - उच्च न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया और उसका फैसला अंतिम हो गया - इसके बाद दोषी को एक याचिका दायर करनी पड़ी बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट में उसकी हिरासत को इस आधार पर चुनौती दी गई कि अपराध करने की तिथि पर वह एक 'बच्चा' था और इस प्रकार उसकी हिरासत अधिनियम की धारा 27 का उल्लंघन थी। ऐसी रिट याचिका क्या सुनवाई योग्य है।

माना जाता है कि यदि सक्षम क्षेत्राधिकार वाला न्यायालय अपने समक्ष चल रही कार्यवाही में कोई आदेश देता है और वह आदेश अंतरपक्षीय होता है। इसकी वैधता को रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करके चुनौती नहीं दी जा सकती भले ही उक्त आदेश पीड़ित पक्ष के मौलिक अधिकारों को प्रभावित कर सकता है। चूँकि कोई भी रिट स्थापित न्यायिक प्रक्रिया के विरुद्ध नहीं होगी

(अस्वीकरण: स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा मैं इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है | सभी व्यवहारिक और अधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा |

अमित वर्मा - अनुवादक